



तत्त्वार्थसूत्र

- आचार्य-उमास्वामी

Index

| गाथा / सूत्र | विषय |
|-----------------------------|---|
| अधिकार-१ (जीवाधिकार) | |
| 001) | मोक्ष का उपाय |
| 002) | सम्यग्दर्शन का लक्षण |
| 003) | उत्पत्ति के आधार पर सम्यग्दर्शन के भेद |
| 004) | सात तत्त्व |
| 005) | सम्यग्दर्शन और जीव आदि के व्यवहार में आने वाले व्यभिचार को दूर करने के लिए निक्षेपों का कथन |
| 006) | तत्त्वों को जानने का उपाय |
| 007) | प्रमाण और नय के द्वारा जाने गये जीव आदि तत्त्वों को जानने का अन्य उपाय |
| 008) | जीव आदि को जानने के और भी उपाय |
| 009) | ज्ञान के भेद |
| 010) | ज्ञान ही प्रमाण है |
| 011) | परोक्ष प्रमाण |
| 012) | प्रत्यक्ष प्रमाण ज्ञान |
| 013) | परोक्ष प्रमाण के संबंध में विशेष कथन |
| 014) | मतिज्ञान किससे उत्पन्न होता है |
| 015) | मतिज्ञान के भेद |
| 016) | अवग्रह आदि ज्ञानों के और भेद |
| 017) | बहु बहुविध आदि किसके विशेषण हैं |
| 018) | सभी पदार्थों के अवग्रह आदि चारों ज्ञान होते हैं या उसमें कुछ अंतर है? |
| 019) | व्यंजनावग्रह सभी इन्द्रियों से नहीं होता |
| 020) | श्रुतज्ञान का स्वरूप |
| 021) | अवधिज्ञान के भेद |
| 022) | क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान किसके होता है? |
| 023) | मनःपर्यय के भेद |
| 024) | मनःपर्यय के दोनो भेदों में विशेषता |
| 025) | अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान में अन्तर |
| 026) | मतिज्ञान और श्रुतज्ञान का विषय |
| 027) | अवधिज्ञान का विषय |
| 028) | मनःपर्यय ज्ञान का विषय |
| 029) | केवल ज्ञान का विषय |
| 030) | एक जीव में एक साथ कितने ज्ञान हो सकते हैं? |
| 031) | कौन-कौन से ज्ञान मिथ्या भी होते हैं? |
| 032) | मिथ्यादृष्टि के ज्ञानों को मिथ्या क्यों कहा जाता है? |

अधिकार-२ (जीवाधिकार)

अधिकार-३ (जीवाधिकार)

अधिकार-४ (जीवाधिकार)

अधिकार-५ (अजीवाधिकार)

अधिकार-६ (आस्रवाधिकार)

अधिकार-७ (आस्रवाधिकार)

अधिकार-८ (बंधाधिकार)

अधिकार-९ (संवर-निर्जराधिकार)

अधिकार-१० (मोक्षाधिकार)

!! श्रीसर्वज्ञवीतरागाय नमः !!

श्रीमद्-भगवत्उमास्वामीदेव-प्रणीत

श्री

तत्त्वार्थ-सूत्र

मूल संस्कृत सूत्र, श्री पूज्यपाद-आचार्य विरचित 'सर्वार्थ-सिद्धि' नामक संस्कृत टीका का हिंदी अनुवाद, श्री अकलान्काचार्य विरचित 'तत्त्वार्थ-राजवार्तिक' नामक संस्कृत टीका का हिंदी अनुवाद सहित

आभार :

!! नमः श्रीसर्वज्ञवीतरागाय !!

ॐकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः ॥१॥

अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलकलंका
मुनिभिरूपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ॥२॥

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥३॥

॥ श्रीपरमगुरुवे नमः, परम्पराचार्यगुरुवे नमः ॥

अर्थ : बिन्दुसहित ॐकार को योगीजन सर्वदा ध्याते हैं, मनोवाँछित वस्तु को देने वाले और मोक्ष को देने वाले ॐकार को बार बार नमस्कार हो । निरंतर दिव्य-ध्वनि-रूपी मेघ-समूह संसार के समस्त पापरूपी मैल को धोनेवाली है मुनियों द्वारा उपासित भवसागर से तिरानेवाली ऐसी जिनवाणी हमारे पापों को नष्ट करो । जिसने अज्ञान-रूपी अंधेरे से अंधे हुये जीवों के नेत्र ज्ञानरूपी अंजन की सलाई से खोल दिये हैं, उस श्री गुरु को नमस्कार हो । परम गुरु को नमस्कार हो, परम्परागत आचार्य गुरु को नमस्कार हो ।

सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमनः
प्रतिबोधकारकं, पुण्यप्रकाशकं, पापप्रणाशकम इदं शास्त्रं श्रीतत्त्वार्थ-सूत्र-नामधेयं,
अस्य मूलाग्रन्थकर्तारः श्रीसर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रन्थकर्तारः श्रीगणधरदेवाः
प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचनानुसारमासाद्य आचार्य श्रीआचार्यउमास्वामीदेव विरचितं,
सर्वे श्रोतारः सावधानतया शृण्वन्तु ॥

(समस्त पापों का नाश करनेवाला, कल्याणों का बढ़ानेवाला, धर्म से सम्बन्ध रखनेवाला, भव्यजीवों के मन को प्रतिबुद्ध-सचेत करनेवाला यह शास्त्र श्रीतत्त्वार्थ-सूत्र नाम का है, मूल-ग्रन्थ के रचयिता सर्वज्ञ-देव हैं, उनके बाद ग्रन्थ को गूँथनेवाले गणधर-देव हैं, प्रति-गणधर देव हैं उनके वचनों के अनुसार लेकर आचार्य श्रीआचार्यउमास्वामीदेव द्वारा रचित यह ग्रन्थ है । सभी श्रोता पूर्ण सावधानी पूर्वक सुनें ।)

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥ सर्वमंगलमांगल्यं सर्वकल्याणकारकं प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम् ॥

आ. उमास्वामी (ई.श.३) कृत मोक्षमार्ग, तत्त्वार्थ दर्शन विषयक १० अध्यायों में सूत्रबद्ध ग्रन्थ है। कुल सूत्र ३५७ हैं। इसी को मोक्षशास्त्र भी कहते हैं। दिगम्बर व श्वेताम्बर दोनों को समान रूप से मान्य है। जैन आम्नाय में यह सर्व प्रधान सिद्धान्त ग्रन्थ माना जाता है। जैन दर्शन प्ररूपक होने के कारण यह जैन बाइबल के रूप में समझा जाता है। इसके मंगलाचरण रूप प्रथम श्लोक पर ही आ०समन्तभद्र (ई.श.२) ने आप्तमीमांसा (देवागम स्तोत्र) की रचना की थी, जिसकी पीछे अकलंकदेव (ई०६२०-६८०) ने ८०० श्लोक प्रमाण अष्टशती नाम की टीका की। आगे आ०विद्यानन्दि नं.१ (ई०७७५-८४०) ने इस अष्टशती पर भी ८००० श्लोक प्रमाण अष्टसहस्री नामकी व्याख्या की। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ पर अनेकों भाष्य टीकाएँ उपलब्ध हैं—

- श्वेताम्बराचार्य वाचकउमास्वामीकृततत्त्वार्थाधिगम भाष्य (संस्कृत);
- आ०समन्तभद्र (ई०२) विरचित ९६०० श्लोक प्रमाण गन्धहस्ति महाभाष्य;
- श्री पूज्यपाद (ई०श०५०) विरचित सर्वार्थसिद्धि;
- योगीन्द्र देव विरचित तत्त्व प्रकाशिका (ई०श०६)
- श्री अकलंक भट्ट (ई०६२०-६८०) विरचित तत्त्वार्थ राजवार्तिक;
- श्री अभयनन्दि (ई.श.१०-११) विरचित तत्त्वार्थ वृत्ति;
- श्री विद्यानन्दि (ई०७७५-८४०) विरचित श्लोकवार्तिक।
- आ०शिवकोटि (ई०श०११) द्वारा रचित रत्नमाला नामकी टीका।
- आ०भास्करनन्दि (ई०श०१२) कृत सुखबोध नामक टीका।
- आ०बालचन्द्र (ई०श०१३) कृत कन्नड़ टीका।
- विबुधसेनाचार्य (?) विरचित तत्त्वार्थ टीका।
- योगदेव (ई०१५७९) विरचित तत्त्वार्थ वृत्ति।
- प्रभाचन्द्र नं०८ (ई०१४३२) कृत तत्त्वार्थ रत्नप्रभाकर
- भट्टारक श्रुतसागर (वि.श.१६)कृत तत्त्वार्थ वृत्ति (श्रुत सागरी)।
- द्वितीय श्रुतसागर विरचित तत्त्वार्थ सुखबोधिनी।
- प०सदासुख (ई०१७९३-१८६३) कृत अर्थ प्रकाशिका नाम टीका।

त्रैकाल्यं द्रव्य-षट्कं नव-पद-सहितं जीव-षट्काय-लेश्याः
पंचान्ये चास्तिकाया व्रत-समिति-गति-ज्ञान-चारित्र-भेदाः
इत्येतन्मोक्षमूलं त्रिभुवन-महितैः प्रोक्तमर्हद्भिरीशैः
प्रत्येति श्रद्धति स्पृशति च मतिमान् यः स वै शुद्धदृष्टिः

अर्थ - तीन काल, छह द्रव्य, नव पदार्थ, छह काय, छहेश्या, पांच अस्तिकाय, पांच व्रत, पांच समिति, गति, पांच ज्ञान और पांच चारित्र भेद रूप ये सब मोक्ष के मूल हैं, ऐसा तीनों लोकों के पूज्य अर्हत भगवान के द्वारा कहा है। जो बुद्धिमान इनकी प्रतिति करता है, श्रद्धान करता है और स्पर्श करता है / इनके नजदीक जाता है, वह निश्चय से शुद्धदृष्टि है ॥

सिद्धे जयप्पसिद्धे चउव्विहाराहणा-फलं पत्ते
वंदित्ता अरहंते वोच्छं आराहणा कमसो
उज्जोवणमुज्जवणं णिव्वाहणं साहणं च णिच्छरणं
दंसण-णाण-चरित्तं तवाणमाराहणा भणिया

अर्थ - जगत में प्रसिद्ध चार प्रकार की आराधना के फल को प्राप्त सिद्धों और अर्हन्तों को नमस्कार करके क्रम से आराधना को कहूंगा। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्त्व के उद्योतन, उद्भव, निवर्हन, साधन और निस्तरण को आराधना कहा है ॥

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम्
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये ॥

अधिकार-१ (जीवाधिकार)

+ मोक्ष का उपाय -

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥१॥

अन्वयार्थ : सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीनों मिलकर मोक्ष का मार्ग हैं ॥१॥

+ सम्यग्दर्शन का लक्षण -

तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥२॥

अन्वयार्थ : अपने अपने स्वरूप के अनुसार पदार्थों का जो श्रद्धान होता है वह सम्यग्दर्शन है ॥२॥

+ उत्पत्ति के आधार पर सम्यग्दर्शन के भेद -

तन्निर्गर्गादधिगमाद्वा ॥३॥

अन्वयार्थ : वह (सम्यग्दर्शन) निर्गम से और अधिगम से उत्पन्न होता है ॥३॥

+ सात तत्त्व -

जीवजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम् ॥४॥

अन्वयार्थ : जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये तत्त्व हैं ॥४॥

+ सम्यग्दर्शन और जीव आदि के व्यवहार में आने वाले व्यभिचार को दूर करने के लिए निक्षेपों का कथन -

नामस्थापनाद्रव्यभाव तस्तन्यासः ॥५॥

अन्वयार्थ : नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव रूप से उनका अर्थात् सम्यग्दर्शन आदि और जीव आदि का न्यास अर्थात् निक्षेप होता है ॥५॥

+ तत्त्वों को जानने का उपाय -

प्रमाणनयैरधिगमः ॥६॥

अन्वयार्थ : प्रमाण और नयों से पदार्थों का ज्ञान होता है ॥६॥

+ प्रमाण और नय के द्वारा जाने गये जीव आदि तत्त्वों को जानने का अन्य उपाय -

निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थिति विधानतः ॥७॥

अन्वयार्थ : निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान से सम्यग्दर्शन आदि विषयों का ज्ञान होता है ॥७॥

+ जीव आदि को जानने के और भी उपाय -

सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्पबहुत्वैश्च ॥८॥

अन्वयार्थ : सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व से भी सम्यग्दर्शन आदि विषयों का ज्ञान होता है ॥८॥

+ ज्ञान के भेद -

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम् ॥९॥

अन्वयार्थ : मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये पाँच ज्ञान हैं ॥९॥

+ ज्ञान ही प्रमाण है -

तत्प्रमाणे ॥१०॥

अन्वयार्थ : वह पाँचों प्रकार का ज्ञान दो प्रमाणरूप है ॥१०॥

+ परोक्ष प्रमाण -

आद्ये परोक्षम् ॥११॥

अन्वयार्थ : प्रथम दो ज्ञान परोक्ष प्रमाण हैं ॥११॥

+ प्रत्यक्ष प्रमाण ज्ञान -

प्रत्यक्षमन्यत् ॥१२॥

अन्वयार्थ : शेष सब ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण हैं ॥१२॥

+ परोक्ष प्रमाण के संबंध में विशेष कथन -

मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यानर्थान्तरम् ॥१३॥

अन्वयार्थ : मति, स्मृति, संज्ञा, चिन्ता और अभिनिबोध ये पर्यायवाची नाम हैं ॥१३॥

+ मतिज्ञान किससे उत्पन्न होता है -
तदिन्द्रयानिन्द्रिय निमित्तम् ॥१४॥

अन्वयार्थ : वह (मतिज्ञान) इन्द्रिय और मन के निमित्त से होता है ॥१४॥

+ मतिज्ञान के भेद -
अवग्रहेहावाय धारणाः ॥१५॥

अन्वयार्थ : अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये मतिज्ञान के चार भेद हैं ॥१५॥

+ अवग्रह आदि ज्ञानों के और भेद -
बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवाणां सेतराणाम् ॥१६॥

अन्वयार्थ : सेतर (प्रतिपक्षसहित) बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिःसृत, अनुक्त और ध्रुव के अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणारूप मतिज्ञान होते हैं ॥१६॥

+ बहु बहुविध आदि किसके विशेषण हैं -
अर्थस्य ॥१७॥

अन्वयार्थ : अर्थ के (वस्तु के) अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये चारों मतिज्ञान होते हैं ॥१७॥

+ सभी पदार्थों के अवग्रह आदि चारों ज्ञान होते हैं या उसमें कुछ अंतर है? -
व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥१८॥

अन्वयार्थ : व्यंजन का अवग्रह ही होता है ॥१८॥

+ व्यंजनावग्रह सभी इन्द्रियों से नहीं होता -
न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ॥१९॥

अन्वयार्थ : चक्षु और मन से व्यंजनावग्रह नहीं होता ॥१९॥

+ श्रुतज्ञान का स्वरूप -
श्रुतं मतिपूर्वं द्वयनेकद्वादशभेदम् ॥२०॥

अन्वयार्थ : श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है। वह दो प्रकार का, अनेक प्रकार का और बारह प्रकार का है ॥२०॥

+ अवधिज्ञान के भेद -
भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम् ॥२१॥

अन्वयार्थ : भवप्रत्यय अवधिज्ञान देव और नारकियों के होता है ॥२१॥

+ क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान किसके होता है? -
क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥२२॥

अन्वयार्थ : क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञान छह प्रकार का है, जो शेष अर्थात् तिर्यचों और मनुष्यों के होता है ॥२२॥

+ मनःपर्यय के भेद -

ऋजुविपुलमती मनःपर्ययः ॥२३॥

अन्वयार्थ : ऋजुमति और विपुलमति मनःपर्ययज्ञान है ॥२३॥

+ मनःपर्यय के दोनो भेदों में विशेषता -

विशुद्धयप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥२४॥

अन्वयार्थ : विशुद्धि और अप्रतिपात की अपेक्षा इन दोनों में अन्तर है ॥२४॥

+ अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान में अन्तर -

विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनःपर्यययोः ॥२५॥

अन्वयार्थ : विशुद्धि, क्षेत्र, स्वामी और विषय की अपेक्षा अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान में भेद है ॥२५॥

+ मतिज्ञान और श्रुतज्ञान का विषय -

मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु ॥२६॥

अन्वयार्थ : मतिज्ञान और श्रुतज्ञान की प्रवृत्ति कुछ पर्यायों से युक्त सब द्रव्यों में होती है ॥२६॥

+ अवधिज्ञान का विषय -

रूपिष्ववधेः ॥२७॥

अन्वयार्थ : अवधिज्ञान की प्रवृत्ति रूपी पदार्थों में होती है ॥२७॥

+ मनःपर्यय ज्ञान का विषय -

तदनन्तभागे मनःपर्ययस्य ॥२८॥

अन्वयार्थ : मनःपर्ययज्ञान की प्रवृत्ति अवधिज्ञान के विषय के अनन्तवें भाग में होती है ॥२८॥

+ केवल ज्ञान का विषय -

सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य ॥२९॥

अन्वयार्थ : केवलज्ञान की प्रवृत्ति सब द्रव्य और उनकी सब पर्यायों में होती है ॥२९॥

+ एक जीव में एक साथ कितने ज्ञान हो सकते हैं? -

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥३०॥

अन्वयार्थ : एक आत्मा में एक साथ एक से लेकर चार ज्ञान तक भजना से होते हैं ॥३०॥

+ कौन-कौन से ज्ञान मिथ्या भी होते हैं? -

मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥३१॥

अन्वयार्थ : मति, श्रुत और अवधि ये तीन विपर्यय भी हैं ॥३१॥

+ मिथ्यादृष्टि के ज्ञानों को मिथ्या क्यों कहा जाता है? -

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥३२॥

अन्वयार्थ : वास्तविक और अवास्तविक के अन्तर के बिना यदृच्छोपलब्धि (जब जैसा जी में आया उस रूप ग्रहण होने) के कारण उन्मत्त की तरह ज्ञान भी अज्ञान हो जाता है ॥३२॥

+ नय के भेद -

नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवंभूता नयाः ॥३३॥

अन्वयार्थ : नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवंभूत ये सात नय हैं ॥३३॥

अधिकार-२ (जीवाधिकार)

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ॥१॥

अन्वयार्थ : औपशमिक, क्षायिक, मिश्र, औदयिक और पारिणामिक ये जीव के स्वतत्त्व हैं ॥१॥

द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम् ॥२॥

अन्वयार्थ : उक्त पाँच भावों के क्रम से दो, नौ, अठारह, इक्कीस और तीन भेद हैं ॥२॥

सम्यक्त्वचारित्रे ॥३॥

अन्वयार्थ : औपशमिक भाव के दो भेद हैं - औपशमिक सम्यक्त्व और औपशमिक चारित्र ॥३॥

ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च ॥४॥

अन्वयार्थ : क्षायिक भाव के नौ भेद हैं - क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दर्शन, क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग, क्षायिक उपभोग, क्षायिक वीर्य, क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक चारित्र ॥४॥

ज्ञानाज्ञानदर्शन लब्धयश्चतुस्त्रि पञ्चभेदाः सम्यक्त्वचारित्र संयमासंयमाश्च ॥५॥

अन्वयार्थ : क्षायोपशमिक भाव के अठारह भेद हैं - चार ज्ञान, तीन अज्ञान, तीन दर्शन, पाँच दानादि लब्धियाँ, सम्यक्त्व, चारित्र और संयमासंयम ॥५॥

गतिकषायलिंग-मिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्यैकैकैक-

षड्भेदाः ॥६॥

अन्वयार्थ : औदयिक भाव के इक्कीस भेद हैं - चार गति, चार कषाय, तीन लिंग, एक मिथ्यादर्शन, एक अज्ञान, एक असंयम, एक असिद्ध भाव और छह लेश्याएँ ॥६॥

जीवभव्याभव्यत्वानि च ॥७॥

अन्वयार्थ : पारिणामिक भाव के तीन भेद हैं - जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व ॥७॥

उपयोगो लक्षणम् ॥८॥

अन्वयार्थ : उपयोग जीव का लक्षण है ॥८॥

स द्विविधोऽष्ट-चतुर्भेदः ॥९॥

अन्वयार्थ : वह उपयोग दो प्रकार का है - ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग। ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का है और दर्शनोपयोग चार प्रकार का है ॥९॥

संसारिणो मुक्ताश्च ॥१०॥

अन्वयार्थ : जीव दो प्रकार के हैं - संसारी और मुक्त ॥१०॥

समनस्काऽमनस्काः ॥११॥

अन्वयार्थ : मनवाले और मनरहित ऐसे संसारी जीव हैं ॥११॥

संसारिणस्त्रसस्थावराः ॥१२॥

अन्वयार्थ : तथा संसारी जीव त्रस और स्थावर के भेद से दो प्रकार हैं ॥१२॥

पृथिव्यप्तेजो वायु-वनस्पतयः स्थावराः ॥१३॥

अन्वयार्थ : पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक ये पाँच स्थावर हैं ॥१३॥

द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ॥१४॥

अन्वयार्थ : दो इन्द्रिय आदि त्रस हैं ॥१४॥

पंचेन्द्रियाणि ॥१५॥

अन्वयार्थ : इन्द्रियाँ पाँच हैं ॥१५॥

द्विविधानि ॥१६॥

अन्वयार्थ : वे प्रत्येक दो-दो प्रकार की हैं ॥१६॥

निर्वृत्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ॥१७॥

अन्वयार्थ : निर्वृत्ति और उपकरणरूप द्रव्येन्द्रिय है ॥१७॥

लब्ध्युपयोगो भावेन्द्रियम् ॥१८॥

अन्वयार्थ : लब्धि और उपयोगरूप भावेन्द्रिय है ॥१८॥

स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुःश्रोत्राणि ॥१९॥

अन्वयार्थ : स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र ये पाँच इन्द्रियाँ हैं ॥१९॥

स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-शब्दास्तदार्थाः ॥२०॥

अन्वयार्थ : स्पर्शन, रस, गन्ध, वर्ण और शब्द ये क्रम से उन इन्द्रियों के विषय हैं ॥२०॥

श्रुतमनिन्द्रियस्य ॥२१॥

अन्वयार्थ : श्रुत मन का विषय है ॥२१॥

वनस्पत्यन्तानामेकम् ॥२२॥

अन्वयार्थ : वनस्पतिकायिक तक के जीवों के एक अर्थात् प्रथम इन्द्रिय होती है ॥२२॥

कृमि-पिपीलिका-भ्रमर-मनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि ॥२३॥

अन्वयार्थ : कृमि, पिपीलिका, भ्रमर और मनुष्य आदि के क्रम से एक-एक इन्द्रिय अधिक होती है ॥२३॥

संज्ञिनः समनस्काः ॥२४॥

अन्वयार्थ : मनवाले जीव संज्ञी जीव होते हैं ॥२४॥

विग्रहगतौ कर्मयोगः ॥२५॥

अन्वयार्थ : विग्रहगति में कर्मणकाय योग होता है ॥२५॥

अनुश्रेणिः गतिः ॥२६॥

अन्वयार्थ : गति श्रेणी के अनुसार होती है ॥२६॥

अविग्रहा जीवस्य ॥२७॥

अन्वयार्थ : मुक्त जीव की गति विग्रहरहित होती है ॥२७॥

विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः ॥२८॥

अन्वयार्थ : संसारी जीव की गति विग्रहरहित और विग्रहवाली होती है। उसमें विग्रहवाली गति चार समय से पहले अर्थात् तीन समय तक होती है ॥२८॥

एकसमयाऽविग्रहा ॥२९॥

अन्वयार्थ : एक समयवाली गति विग्रहरहित होती है ॥२९॥

एकं द्वौ त्रीन्वानाहारकः ॥३०॥

अन्वयार्थ : एक, दो या तीन समय तक जीव अनाहारक रहता है ॥३०॥

सम्मूर्च्छन-गर्भोपपादा जन्म ॥३१॥

अन्वयार्थ : सम्मूर्च्छन, गर्भ और उपपाद ये (तीन) जन्म हैं ॥३१॥

सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥३२॥

अन्वयार्थ : सचित्त, शीत और संवृत तथा इनकी प्रतिपक्षभूत अचित्त, उष्ण और विवृत तथा मिश्र अर्थात् सचित्ताचित्त, शीतोष्ण और संवृतविवृत ये उसकी अर्थात् जन्म की योनियाँ हैं ॥३२॥

जरायुजाण्डजपोतानां गर्भः ॥३३॥

अन्वयार्थ : जरायुज, अण्डज और पोत जीवों का गर्भजन्म होता है ॥३३॥

देवनारकाणामुपपादः ॥३४॥

अन्वयार्थ : देव और नारकियों का उपपाद जन्म होता है ॥३४॥

शेषाणां सम्मूर्च्छनं ॥३५॥

अन्वयार्थ : शेष सब जीवों का सम्मूर्च्छन जन्म होता है ॥३५॥

औदारिक-वैक्रियिकाहारक-तैजस-कर्मणानि शरीराणि ॥३६॥

अन्वयार्थ : औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कर्मण ये पाँच शरीर हैं ॥३६॥

परं परं सूक्ष्मम् ॥३७॥

अन्वयार्थ : आगे-आगे का शरीर सूक्ष्म है ॥३७॥

प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक् तैजसात् ॥३८॥

अन्वयार्थ : तैजस से पूर्व तीन शरीरों में आगे-आगे का शरीर प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यातगुणा है ॥३८॥

अनन्तगुणे परे ॥३९॥

अन्वयार्थ : परवर्ती दो शरीर प्रदेशों की अपेक्षा उत्तरोत्तर अनन्तगुणे हैं ॥३९॥

अप्रतीघाते ॥४०॥

अन्वयार्थ : प्रतीघात रहित हैं ॥४०॥

अनादिसंबन्धे च ॥४१॥

अन्वयार्थ : आत्मा के साथ अनादि सम्बन्धवाले हैं ॥४१॥

सर्वस्य ॥४२॥

अन्वयार्थ : तथा सब संसारी जीवों के होते हैं ॥४२॥

तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥४३॥

अन्वयार्थ : एक साथ एक जीव के तैजस और कार्मण से लेकर चार शरीर तक विकल्प से होते हैं ॥४३॥

निरूपभोगमन्त्यम् ॥४४॥

अन्वयार्थ : अन्तिम शरीर उपभोगरहित है ॥४४॥

गर्भसम्मूर्च्छनजमाद्यम् ॥४५॥

अन्वयार्थ : पहला शरीर गर्भ और संमूर्च्छन जन्म से पैदा होता है ॥४५॥

औपपादिकं वैक्रियिकम् ॥४६॥

अन्वयार्थ : वैक्रियिक शरीर उपपाद जन्म से पैदा होता है ॥४६॥

लब्धिप्रत्ययं च ॥४७॥

अन्वयार्थ : तथा लब्धि से भी पैदा होता है ॥४७॥

तैजसमपि ॥४८॥

अन्वयार्थ : तैजस शरीर भी लब्धि से पैदा होता है ॥४८॥

शुभं विशुद्धमव्याधाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ॥४९॥

अन्वयार्थ : आहारक शरीर शुभ, विशुद्ध और व्याधात रहित है और वह प्रमत्तसंयत के ही होता है ॥४९॥

नारकसंमूर्च्छिनो नपुंसकानि ॥५०॥

अन्वयार्थ : नारक और संमूर्च्छिन नपुंसक होते हैं ॥५०॥

न देवाः ॥५१॥

अन्वयार्थ : देव नपुंसक नहीं होते ॥५१॥

शेषास्त्रिवेदाः ॥५२॥

अन्वयार्थ : शेष के सब जीव तीन वेदवाले होते हैं ॥५२॥

औपपादिक चरमोत्तम-देहाऽसंख्येय-वर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥५३॥

अन्वयार्थ : उपपाद जन्मवाले, चरमोत्तम देहवाले और असंख्यात वर्ष की आयुवाले जीव अनपवर्त्य अन्य आयु वाले होते हैं ॥५३॥

अधिकार-३ (जीवाधिकार)

**रत्न-शर्करा-बालुका-पंक-धूम-तमो-महातमः प्रभा भूमयो घनाम्बुवाताकाश प्रतिष्ठाः
सप्ताऽधोऽधः ॥१॥**

अन्वयार्थ : रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमःप्रभा ये सात भूमियाँ घनाम्बु, वात और आकाश के सहारे स्थित हैं तथा क्रमसे नीचे-नीचे हैं ॥१॥

**तासु त्रिंशत्पंचविंशति पंचदशदश-त्रि-पंचोनैक-नरक-शतसहस्राणि पंच चैव
यथाक्रमम् ॥२॥**

अन्वयार्थ : उन भूमियों में क्रम से तीस लाख, पचीस लाख, पन्द्रह लाख, दस लाख, तीन लाख, पाँच कम एक लाख और पाँच नरक हैं ॥२॥

नारका नित्याऽशुभतर-लेश्या-परिणामदेह-वेदना-विक्रियाः ॥३॥

अन्वयार्थ : नारकी निरन्तर अशुभतर लेश्या, परिणाम, देह, वेदना और विक्रियावाले हैं ॥३॥

परस्परोदीरित-दुःखाः ॥४॥

अन्वयार्थ : तथा वे परस्पर उत्पन्न किये गये दुःखवाले होते हैं ॥४॥

संक्लिष्टासुरोदीरित-दुःखाश्च प्राक् चतुर्थ्याः ॥५॥

अन्वयार्थ : और चौथी भूमि से पहले तक वे संक्लिष्ट असुरों के द्वारा उत्पन्न किये गये दुःखवाले भी होते हैं ॥५॥

**तेष्वेक-त्रि-सप्त-दश-सप्तदश-द्वाविंशति-त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा
स्थितिः ॥६॥**

अन्वयार्थ : उन नरकों में जीवों की उत्कृष्ट स्थिति क्रम से एक, तीन, सात, दस, सत्रह, बाईस और तैंतीस सागरोपम है ॥६॥

जम्बूद्वीप-लवणोदादयः शुभनामानो द्वीप-समुद्रा ॥७॥

अन्वयार्थ : जम्बूद्वीप आदि शुभ नामवाले द्वीप और लवणोद आदि शुभ नामवाले समुद्र हैं ॥७॥

द्विद्विविष्कम्भाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः ॥८॥

अन्वयार्थः : वे सभी द्वीप और समुद्र दूने-दूने व्यासवाले, पूर्व-पूर्व द्वीप और समुद्र को वेष्टित करने वाले और चूड़ी के आकार वाले हैं ॥८॥

तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥९॥

अन्वयार्थः : उन सबके बीच में गोल और एक लाख योजन विष्कम्भवाला जम्बूद्वीप है। जिसके मध्य में नाभि के समान मेरु पर्वत है ॥९॥

भरतहैमवत-हरि-विदेह-रम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥१०॥

अन्वयार्थः : भरतवर्ष, हैमवतवर्ष, हरिवर्ष, विदेहवर्ष, रम्यकवर्ष, हैरण्यवतवर्ष और ऐरावतवर्ष ये सात क्षेत्र हैं ॥१०॥

तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषध-नील-रुक्मि-शिखरिणो वर्षधर-पर्वताः ॥११॥

अन्वयार्थः : उन क्षेत्रों को विभाजित करनेवाले और पूर्व-पश्चिम लम्बे ऐसे हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मी और शिखरी ये छह वर्षधर पर्वत हैं ॥११॥

हेमार्जुन-तपनीय वैडूर्य-रजत हेममयाः ॥१२॥

अन्वयार्थः : ये छहों पर्वत क्रम से सोना, चाँदी, तपाया हुआ सोना, वैडूर्यमणि, चाँदी और सोना इनके समान रंगवाले हैं ॥१२॥

मणि-विचित्र-पार्श्वा उपरि मूले च तुल्यविस्ताराः ॥१३॥

अन्वयार्थः : इनके पार्श्व मणियों से चित्र-विचित्र हैं तथा वे ऊपर, मध्य और मूल में समान विस्तारवाले हैं ॥१३॥

पद्ममहापद्मतिगिञ्छकेशरि महापुण्डरीकपुण्डरीका-हृदास्तेषामुपरि ॥१४॥

अन्वयार्थः : इन पर्वतों के ऊपर क्रम से पद्म, महापद्म, तिगिञ्छ, केसरी, महापुण्डरीक और पुण्डरीक ये तालाब हैं ॥१४॥

प्रथमो योजन-सहस्रायामस्तदर्द्धविष्कम्भो हृदः । ॥१५॥

अन्वयार्थः : पहला तालाब एक हजार योजन लम्बा और इससे आधा चौड़ा है ॥१५॥

दशयोजनावगाहः ॥१६॥

अन्वयार्थः : तथा दस योजन गहरा है ॥१६॥

तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥१७॥

अन्वयार्थः : इसके बीच में एक योजन का कमल है ॥१७॥

तद् द्विगुण-द्विगुणा हृदाः पुष्कराणि च ॥१८॥

अन्वयार्थ : आगे के तालाब और कमल दूने-दूने हैं ॥१८॥

**तन्निवासिन्यो देव्यः श्री-ह्री-धृति-कीर्ति-बुद्धि-लक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिक
परिषत्काः ॥१९॥**

अन्वयार्थ : इनमें श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी ये देवियाँ सामानिक और परिषद् देवों के साथ निवास करती हैं।
तथा इनकी आयु एक पल्योपम है ॥१९॥

**गंगासिन्धु रोहिद्रोहितास्या-हरिद्धरिकान्ता सीतासीतोदा-नारीनरकान्ता
सुवर्णरूप्यकूला रक्तारक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः ॥२०॥**

अन्वयार्थ : इन भरत आदि क्षेत्रों में-से गंगा, सिन्धु, रोहित, रोहितास्या, हरित्, हरिकान्ता, सीता, सीतोदा, नारी, नरकान्ता,
सुवर्णकूला, रूप्यकूला, रक्ता और रक्तोदा नदियाँ बही हैं ॥२०॥

द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥२१॥

अन्वयार्थ : दो-दो नदियों में-से पहली-पहली नदी पूर्व समुद्र को जाती है ॥२१॥

शेषास्त्वपरगाः ॥२२॥

अन्वयार्थ : किन्तु शेष नदियाँ पश्चिम समुद्र को जाती हैं ॥२२॥

चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृता गंगासिन्ध्वादयो नद्यः ॥२३॥

अन्वयार्थ : गंगा और सिन्धु आदि नदियों की चौदह-चौदह हजार परिवार नदियाँ हैं ॥२३॥

भरतः षड्विंशति-पंचयोजनशत-विस्तारः षट्चैकोनविंशतिभागा-योजनस्य ॥२४॥

अन्वयार्थ : भरत क्षेत्र का विस्तार पाँच सौ छब्बीस सही छह बटे उन्नीस योजन है ॥२४॥

तद् द्विगुण द्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहान्ताः ॥२५॥

अन्वयार्थ : विदेह पर्यन्त पर्वत और क्षेत्रों का विस्तार भरत क्षेत्र के विस्तार से दूना-दूना है ॥२५॥

उत्तरा दक्षिण-तुल्याः ॥२६॥

अन्वयार्थ : उत्तर के क्षेत्र और पर्वतों का विस्तार दक्षिण के क्षेत्र और पर्वतों के समान है ॥२६॥

भरतैरावतयोर्वृद्धिहासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम् ॥२७॥

अन्वयार्थ : भरत और ऐरावत क्षेत्रों में उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के छह समयों की अपेक्षा वृद्धि और हास होता रहता है
॥२७॥

ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ॥२८॥

अन्वयार्थ : भरत और ऐरावत के सिवा शेष भूमियाँ अवस्थित हैं ॥२८॥

एकद्वित्रिपल्योपम-स्थितयो हैमवतक हरिवर्षक दैवकुरुवकाः ॥२९॥

अन्वयार्थ : हैमवत, हरिवर्ष और देवकुरु के मनुष्यों की स्थिति क्रम से एक, दो और तीन पल्योपम प्रमाण है ॥२९॥

तथोत्तराः ॥३०॥

अन्वयार्थ : दक्षिण के समान उत्तर में है ॥३०॥

विदेहेषु संख्येयकालाः ॥३१॥

अन्वयार्थ : विदेहों में संख्यात वर्ष की आयुवाले मनुष्य हैं ॥३१॥

भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशतभागः ॥३२॥

अन्वयार्थ : भरत क्षेत्र का विस्तार जम्बूद्वीप का एक सौ नब्बेवाँ भाग है ॥३२॥

द्विधातकीखण्डे ॥३३॥

अन्वयार्थ : धातकीखण्ड में क्षेत्र तथा पर्वत आदि जम्बूद्वीप से दूने हैं ॥३३॥

पुष्करार्द्धे च ॥३४॥

अन्वयार्थ : पुष्करार्द्ध में उतने ही क्षेत्र और पर्वत हैं ॥३४॥

प्राङ् मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥३५॥

अन्वयार्थ : मानुषोत्तर पर्वत के पहले तक ही मनुष्य हैं ॥३५॥

आर्या म्लेच्छाश्च ॥३६॥

अन्वयार्थ : मनुष्य दो प्रकार के हैं-आर्य और म्लेच्छ ॥३६॥

भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरुत्तरकुरुभ्यः ॥३७॥

अन्वयार्थ : देवकुरु और उत्तरकुरु के सिवा भरत, ऐरावत और विदेह ये सब कर्मभूमियाँ हैं ॥३७॥

नृस्थितीपरावरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ॥३८॥

अन्वयार्थ : मनुष्यों की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम और जघन्य अन्तर्मुहूर्त है ॥३८॥

तिर्यग्योनिजानां च ॥३९॥

अन्वयार्थ : तिर्यचों की स्थिति भी उतनी ही है ॥३९॥

अधिकार-४ (जीवाधिकार)

देवाश्चतुर्णिकायाः ॥१॥

अन्वयार्थ : देव चार निकाय वाले हैं ॥१॥

आदितस्त्रिषु पीतान्तलेश्याः ॥२॥

अन्वयार्थ : आदि के तीन निकायों में पीत पर्यन्त चार लेश्याएँ हैं ॥२॥

दशाष्ट-पञ्च-द्वादश-विकल्पा कल्पोपपन्न पर्यन्ताः ॥३॥

अन्वयार्थ : वे कल्पोपपन्न देव तक के चार निकाय के देव क्रम से दस, आठ, पांच और बारह भेद वाले हैं ॥३॥

इन्द्र-सामानिक-त्रायस्त्रिंश-पारिषदात्मरक्ष-लोकपालानीक-
प्रकीर्णकाभियोग्यकिल्बिषिकाश्चैकशः ॥४॥

अन्वयार्थ : उक्त दस आदि भेदों में-से प्रत्येक इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, पारिषद, आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य ओर किल्बिषिक रूप हैं ॥४॥

त्रायस्त्रिंश-लोकपाल-वर्ज्या व्यंतरज्योतिष्काः ॥५॥

अन्वयार्थ : किन्तु व्यन्तर और ज्योतिष्क देव त्रायस्त्रिंश और लोकपाल इन दो भेदों से रहित हैं ॥५॥

पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ॥६॥

अन्वयार्थ : प्रथम दो निकायो में दो दो इन्द्र हैं ॥६॥

काय-प्रवीचारा आ ऐशानात् ॥७॥

अन्वयार्थ : ऐशान तक के देव कायप्रवीचार अर्थात् शरीर से विषय सुख भोगने वाले होते हैं ॥७॥

शेषाः स्पर्श-रूप-शब्द-मनः प्रवीचाराः ॥८॥

अन्वयार्थ : शेष देव स्पर्श, रूप, शब्द और मन से विषय सुख भोगने वाले होते हैं ॥८॥

परेऽप्रवीचाराः ॥९॥

अन्वयार्थ : बाकी के सब देव विषय सुख से रहित होते हैं ॥९॥

भवन-वासिनोऽसुरनाग-विद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधि-द्वीप-दिक्कुमाराः ॥१०॥

अन्वयार्थ : भवनवासी देव दस प्रकार के हैं - असुरकुमार, नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार और दिक्कुमार ॥१०॥

व्यन्तराः किन्नर-किम्पुरुष-महोरग-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-भूत-पिशाचाः ॥११॥

अन्वयार्थ : व्यन्तर देव आठ प्रकार के हैं- किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच ॥११॥

ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रह-नक्षत्र-प्रकीर्णक-तारकाश्च ॥१२॥

अन्वयार्थ : ज्योतिषी देव पाँच प्रकार के हैं - सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्णक तारे ॥१२॥

मेरु-प्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥१३॥

अन्वयार्थ : ज्योतिषी देव मनुष्यलोक में मेरू की प्रदक्षिणा करते हैं और निरन्तर गतिशील हैं ॥१३॥

तत्कृतः काल विभागः ॥१४॥

अन्वयार्थ : उन (ज्योतिष्क देवों) के द्वारा काल-विभाग होता है ।

बहिरवस्थिताः ॥१५॥

अन्वयार्थ : मनुष्य लोक के बाहर ज्योतिष्क देव स्थिर हैं, गमन नहीं करते ।

वैमानिकाः ॥१६॥

अन्वयार्थ : अब वैमानिक देवों का वर्णन करते हैं ।

कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥१७॥

अन्वयार्थ : वे दो प्रकार के हैं -- कल्पोपपन्न और कल्पातीत ।

उपर्युपरि ॥१८॥

अन्वयार्थ : ये कल्पादि क्रमशः ऊपर ऊपर हैं ।

**सौधर्मेशान-सानत्कुमार-माहेन्द्र-ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर-लान्तव-कापिष्ठ-शुक्र-महाशुक्र-शतार-
सहस्रारेष्वानतप्राणत-योरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजय-वैजयन्त
जयन्तापराजितेषु सर्वार्थ-सिद्धौ च ॥१९॥**

अन्वयार्थ : सौधर्म-ऐशान, सानत्कुमार-माहेन्द्र, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव-कापिष्ठ, शुक्र-महाशुक्र, शतार-सहस्रार, आनत-प्राणत, आरण-अच्युत आठ स्वर्गों के युगलों में देवों के निवास-स्थान विमान हैं तथा नौ ग्रैवेयक, (नवसु) नौ अनुदिश, विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित और सर्वार्थसिद्धि अनुत्तर-विमानों में अहमिन्द्र कल्पातीत-देव रहते हैं ।

स्थिति-प्रभाव-सुख-द्वयुति-लेश्याविशुद्धीन्द्रियावधि-विषय-तोऽधिकाः ॥२०॥

अन्वयार्थ : ऊपर-ऊपर के देवों की आयु, प्रभाव, सुख, कांति, लेश्या, विशुद्धि, इन्द्रिय-विषय और अवधिज्ञान के विषय क्रमशः उत्तरोत्तर वृद्धिगत होते हैं ।

गति-शरीर-परिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥२१॥

अन्वयार्थ : नीचे के स्वर्गों से ऊपर-ऊपर के स्वर्गों के देवों में गति, शरीर, परिग्रह, अभिमान क्रमश हीन-हीन होता है ।

पीत-पद्म-शुक्ल-लेश्या द्वि-त्रि-शेषेषु ॥२२॥

अन्वयार्थ : प्रथम दो युगलों में, तीन युगलों में और शेष समस्त विमानों में देवों की क्रमश पीत, पद्म और शुक्ल लेश्याएं होती हैं ।

प्राग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ॥२३॥

अन्वयार्थ : ग्रैवेयकों से पहिले अर्थात् १६वें स्वर्ग तक कल्प कहते हैं क्योंकि वहीं तक के देवों में इन्द्रादिक दस-भेदों की कल्पना है ।

ब्रह्म-लोकालया लौकान्तिकाः ॥२४॥

अन्वयार्थ : ब्रह्म-लोक (पांचवे स्वर्ग) के निवासी देव लौकान्तिक देव कहलाते हैं ।

सारस्वतादित्य वह्न्यरुण-गर्दतोय-तुषिताव्या-बाधारिष्ठाश्च ॥२५॥

अन्वयार्थ : लौकान्तिक देवों के सारस्वत, आदित्य, वह्नि, अरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध और अरिष्ट आठ भेद नाम हैं । यहाँ च से सूचित होता है कि प्रत्येक के बीच २-२ लौकान्तिक देव और हैं ।

विजयादिषु द्वि-चरमाः ॥२६॥

अन्वयार्थ : नव अनुदिश के नौ और ४ अनुत्तरो; विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित के देव उत्कृष्टता से दो भवधारी होते हैं ।

औपपादिक-मनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥२७॥

अन्वयार्थ : उपपाद जन्म वाले देवों, नारकियों और मनुष्यों के अतिरिक्त सभी तिर्यच-योनी के जीव हैं ।

स्थितिरसुर-नाग-सुपर्ण-द्वीपशेषाणां-सागरोपम-त्रिपल्योपमार्द्धहीन-मिताः ॥२८॥

अन्वयार्थ : भवनवासी देवों में असुरकुमार की आयु १ सागर, नाग कुमार की ३ पल्य, सुपर्ण कुमार की २.५ पल्य, द्वीप कुमार की २ पल्य तथा शेष छ देवों (विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, वातकुमार, स्तनिक कुमार, उदाधि कुमार और दिक्कुमार) की १.५ पल्य है ।

सौधर्मेशानयोः सागरोपमेऽधिके ॥२९॥

अन्वयार्थ : सौधर्मेश और ऐशान स्वर्गों के देवों की उत्कृष्ट आयु दो सागर से कुछ अधिक है ।

सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः सप्त ॥३०॥

अन्वयार्थ : सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गों में देवों की उत्कृष्ट-आयु सात सागर है ।

त्रिसप्त-नवैकादश-त्रयोदश-पञ्चदशभिरधिकानि तु ॥३१॥

अन्वयार्थ : तीसरे युगल, (ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर) में १० सागर चौथे युगल (लांतव-कापिष्ठ) में १४ सागर, पांचवे युगल (शुक्र-महाशुक्र) में १६ सागर, छठे युगल (शतार-सहस्रार) में १८ सागर, सातवें युगल (आणत-प्राणत) में २२ सागर और आठवे युगल (आरण-अच्युत) में देवों की उत्कृष्टायु आयु २२ सागर है ।

आरणाच्युता-दूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥३२॥

अन्वयार्थ : आरण और अच्युत स्वर्गों के आठवें युगल से ऊपर नव-अनुदिश ,और विजयादि चार अनुत्तरों और सर्वार्थसिद्धि में देवों की उत्कृष्ट आयु क्रमश १-१ सागर वृद्धिगत है ।

अपरा पल्योपममधिकम् ॥३३॥

अन्वयार्थ : सौधर्मेन्द्र और ऐशान स्वर्ग में देवों की जघन्यायु एक पल्य है ।

परतः परतः पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा ॥३४॥

अन्वयार्थ : स्वर्गों में अगले स्वर्ग युगल के देवों की जघन्यायु पाहिले-पाहिले स्वर्ग युगल के देवों के उत्कृष्टायु से एक समय अधिक है ।

नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥३५॥

अन्वयार्थ : द्वितीय आदि नरकों में नारकियों की जघन्य स्थिति पूर्व-पूर्व के नारकियों की उत्कृष्ट स्थिति के समान है ।

दश-वर्षसहस्राणि प्रथमायाम् ॥३६॥

अन्वयार्थ : थम नरक में नारकी की जघन्यायु दस हज़ार वर्ष है ।

भवनेषु च ॥३७॥

अन्वयार्थ : भवनवासी देवों की जघन्यायु भी १० हज़ार वर्ष है ।

व्यन्तराणां च ॥३८॥

अन्वयार्थ : व्यन्तर देवों की भी दस हज़ार वर्ष जघन्यायु है ।

परा पल्योपममधिकम् ॥३९॥

अन्वयार्थ : व्यन्तर-देवों की उत्कृष्टायु पल्य से कुछ अधिक है ।

ज्योतिष्काणां च ॥४०॥

अन्वयार्थ : ज्योतिष्क देवों की भी उत्कृष्टायु १ पल्य से कुछ अधिक होती है ।

तदष्टभागोऽपरा ॥४१॥

अन्वयार्थ : ज्योतिष्क देवों में जघन्यायु एक पल्य का आठवा भाग है ।

लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥४२॥

अन्वयार्थ : लौकान्तिक देवों की एक समान जघन्यायु और उत्कृष्टायु ८ सागर प्रमाण ही है ।

अधिकार-५ (अजीवाधिकार)

अजीव-काया-धर्माधर्माकाश-पुद्गलाः ॥१॥

अन्वयार्थ : धर्म, अधर्म, आकाश, और पुद्गल अजीव (चेतना रहित) और कायावान (बहु प्रदेशी) है ।

द्रव्याणि ॥२॥

अन्वयार्थ : (धर्म, अधर्म, आकाश, और पुद्गल) द्रव्य हैं ।

जीवाश्च ॥३॥

अन्वयार्थ : जीव भी द्रव्य है ।

नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥४॥

अन्वयार्थ : (ऊपर कहे हुए सभी द्रव्य) नित्य (अविनाशी) है, अवस्थित (संख्या निश्चित है), अन्यरूपाणि (चक्षु इन्द्रिय से देखे नहीं जा सकते / अरूपी) हैं ।

रूपिणः पुद्गलाः ॥५॥

अन्वयार्थ : पुद्गल द्रव्य रूपी (मूर्तिक) है ।

आ आकाशादेक-द्रव्याणि ॥६॥

अन्वयार्थ : आकाशपर्यन्त सभी द्रव्य (धर्म, अधर्म और आकाश) १-१ हैं ।

निष्क्रियाणि च ॥७॥

अन्वयार्थ : और (धर्म, अधर्म और आकाश ये तीनों द्रव्य) निष्क्रिय (क्रियारहित) हैं ।

असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानाम् ॥८॥

अन्वयार्थ : धर्म, अधर्म और एक जीवद्रव्य के असंख्यात-असंख्यात प्रदेश होते हैं ।

आकाशस्यानन्ताः ॥९॥

अन्वयार्थ : आकाश के अनंत प्रदेश हैं ।

संख्येयासंख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥१०॥

अन्वयार्थ : पुद्गल के संख्यात, असंख्यात और अनंत प्रदेश होते हैं ।

नाणोः ॥११॥

अन्वयार्थ : पुद्गल परमाणु एकप्रदेशी ही है ।

लोकाकाशेऽवगाहः ॥१२॥

अन्वयार्थ : इन द्रव्यों का अवगाहन लोकाकाश में है ।

धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥१३॥

अन्वयार्थ : धर्म और अधर्म द्रव्य सम्पूर्ण लोकाकाश में तिल में तेल के समान व्याप्त है ।

एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ॥१४॥

अन्वयार्थ : पुद्गलों का अवगाह लोकाकाश के एक प्रदेश आदि में विकल्प से होता है ॥१४॥

असंख्येय-भागादिषु जीवानाम् ॥१५॥

अन्वयार्थ : लोकाकाश के असंख्यातवें भाग आदि में जीवों का अवगाह है ॥१५॥

प्रदेश-संहार-विसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ॥१६॥

अन्वयार्थ : क्योंकि प्रदीप के समान जीव के प्रदेशों का संकोच और विस्तार होने के कारण लोकाकाश के असंख्येयभागादिक में जीवों का अवगाह बन जाता है ॥१६॥

गति-स्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ॥१७॥

अन्वयार्थ : गति और स्थिति में निमित्त होना यह क्रम से धर्म और अधर्म द्रव्य का उपकार है ॥१७॥

आकाशस्या-वगाहः ॥१८॥

अन्वयार्थ : आकाश देना आकाश का उपकार है ॥१८॥

शरीरवाङ्मनः-प्राणापाना पुद्गलानाम् ॥१९॥

अन्वयार्थ : शरीर, वचन, मन और प्राणापान यह पुद्गलों का उपकार है ॥१९॥

सुख-दुःख-जीवितमरणोपग्रहाश्च ॥२०॥

अन्वयार्थ : सुख, दुःख जीवित और मरण ये भी पुद्गलों के उपकार हैं ॥२०॥

परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥२१॥

अन्वयार्थ : परस्पर निमित्त होना यह जीवों का उपकार है ॥२१॥

वर्तना-परिणाम-क्रिया-परत्वापरत्वे च कालस्य ॥२२॥

अन्वयार्थ : वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व ये काल के उपकार हैं ॥२२॥

स्पर्श-रस-गंध-वर्णवन्तः पुद्गलाः ॥२३॥

अन्वयार्थ : स्पर्श, रस, गन्ध और वर्णवाले पुद्गल होते हैं ॥२३॥

शब्द-बंध-सौक्ष्म्य-स्थौल्य-संस्थान-भेद-तमश्छायातपोद्योतवन्तश्च ॥२४॥

अन्वयार्थ : तथा वे शब्द, बन्ध, सूक्ष्मत्व, स्थूलत्व, संस्थान, अन्धकार, छाया, आतप और उद्योत वाले होते हैं ॥२४॥

अणवः स्कन्धाश्च ॥२५॥

अन्वयार्थ : पुद्गल के दो भेद हैं - अणु और स्कन्ध ॥२५॥

भेद-संघातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥२६॥

अन्वयार्थ : भेद से, संघात से तथा भेद और संघात दोनों से स्कन्ध उत्पन्न होते हैं ॥२६॥

भेदादणुः ॥२७॥

अन्वयार्थ : भेद से अणु उत्पन्न होता है ॥२७॥

भेद-संघाताभ्यां चाक्षुषः ॥२८॥

अन्वयार्थ : भेद और संघात से चाक्षुष स्कन्ध बनता है ॥२८॥

सद् द्रव्य-लक्षणम् ॥२९॥

अन्वयार्थ : द्रव्य का लक्षण सत् है ॥२९॥

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्तं सत् ॥३०॥

अन्वयार्थ : जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य इन तीनों से युक्त अर्थात् इन तीनों रूप है वह सत् है ॥३०॥

तद्भावाव्ययं नित्यम् ॥३१॥

अन्वयार्थ : उसके भाव से (अपनी जाति से) च्युत न होना नित्य है ॥३१॥

अर्पितानर्पितसिद्धेः ॥३२॥

अन्वयार्थ : मुख्यता और गौणता की अपेक्षा एक वस्तु में विरोधी मालूम पड़ने वाले दो धर्मों की सिद्धि होती है ॥३२॥

स्निग्ध-रूक्षत्वाद् बन्धः ॥३३॥

अन्वयार्थ : स्निग्धत्व और रूक्षत्व से बन्ध होता है ॥३३॥

न जघन्य-गुणानाम् ॥३४॥

अन्वयार्थ : जघन्य गुणवाले पुद्गलों का बन्ध नहीं होता ॥३४॥

गुणसाम्ये सदृशानाम् ॥३५॥

अन्वयार्थ : गुणों की समानता होने पर तुल्य जातिवालों का बन्ध नहीं होता ॥३५॥

द्वयधिकादि गुणानां तु ॥३६॥

अन्वयार्थ : दो अधिक आदि शक्त्यंशवालों का तो बन्ध होता है ॥३६॥

बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ॥३७॥

अन्वयार्थ : बन्ध होते समय दो अधिक गुणवाला परिणमन करानेवाला होता है ॥३७॥

गुण-पर्यायवद् द्रव्यम् ॥३८॥

अन्वयार्थ : गुण और पर्यायवाला द्रव्य है ॥३८॥

कालश्च ॥३९॥

अन्वयार्थ : काल भी द्रव्य है ॥३९॥

सोऽनन्तसमयः ॥४०॥

अन्वयार्थ : वह अनन्त समयवाला है ॥४०॥

द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ॥४१॥

अन्वयार्थ : जो निरन्तर द्रव्य में रहते हैं और गुणरहित हैं वे गुण हैं ॥४१॥

तद्भावः परिणामः ॥४२॥

अन्वयार्थ : उसका होना अर्थात् प्रति समय बदलते रहना परिणाम है ॥४२॥

अधिकार-६ (आस्रवाधिकार)

काय-वाङ्मनः कर्म-योगः ॥१॥

अन्वयार्थः : काय, वचन और मन की क्रिया योग है ॥१॥

स आस्रवः ॥२॥

अन्वयार्थः : वही आस्रव है ॥२॥

शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ॥३॥

अन्वयार्थः : शुभयोग पुण्य का और अशुभयोग पाप का आस्रव है ॥३॥

सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्यापथयोः ॥४॥

अन्वयार्थः : कषायसहित और कषायरहित आत्मा का योग क्रम से साम्परायिक और ईर्यापथ कर्म के आस्रवरूप है ॥४॥

इन्द्रिय-कषायाव्रत-क्रियाः पंच-चतुः-पंच-पंचविंशति-संख्याः पूर्वस्य भेदाः ॥५॥

अन्वयार्थः : पूर्व के अर्थात् साम्परायिक कर्मास्रव के इन्द्रिय, कषाय, अव्रत और क्रियारूप भेद हैं जो क्रम से पाँच, चार, पाँच और पच्चीस हैं ॥५॥

तीव्र-मंद-ज्ञाताज्ञात-भावाधिकरण-वीर्य-विशेषेभ्यस्तद्विशेषः ॥६॥

अन्वयार्थः : तीव्र-भाव, मन्द-भाव, ज्ञात-भाव, अज्ञात-भाव, अधिकरण-विशेष और वीर्य-विशेष के भेद से उसकी (आस्रव की) विशेषता होती है ॥६॥

अधिकरणं जीवाजीवाः ॥७॥

अन्वयार्थः : अधिकरण जीव और अजीवरूप हैं ॥७॥

**आद्यं संरम्भ-समारम्भारम्भयोग कृत-कारितानुमत-कषाय-विशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रि-
श्चतुश्चैकशः ॥८॥**

अन्वयार्थः : पहला जीवाधिकरण संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ के भेद से तीन प्रकार का, योगों के भेद से तीन प्रकार का; कृत, कारित और अनुमत के भेद से तीन प्रकार का तथा कषायों के भेद से चार प्रकार का होता हुआ परस्पर मिलाने से एक सौ आठ प्रकार का है ॥८॥

निर्वर्तना-निक्षेप-संयोग-निसर्गा द्विचतुर्द्वि-त्रिभेदाः परम् ॥९॥

अन्वयार्थः : पर अर्थात् अजीवाधिकरण क्रम से दो, चार, दो और तीन भेदवाले निर्वर्तना, निक्षेप, संयोग और निसर्गरूप है ॥९॥

तत्प्रदोष-निहव-मात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञान-दर्शनावरणयोः ॥१०॥

अन्वयार्थ : ज्ञान और दर्शन के विषय में प्रदोष, निहव, मात्सर्य, अन्तराय, आसादन और उपघात ये ज्ञानावरण और दर्शनावरण के आस्रव हैं ॥१०॥

दुःख-शोक-तापाक्रन्दन-वध-परिदेवनान्यात्म-परोभय-स्थानान्यसद्वेद्यस्य ॥११॥

अन्वयार्थ : अपने में, दूसरे में या दोनों में विद्यमान दुःख, शोक, ताप, आक्रन्दन, वध और परिदेवन ये असाता वेदनीय कर्म के आस्रव हैं ॥ ११ ॥

भूत-व्रत्यनुकम्पादान-सराग-संयमादि-योगः क्षांतिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥१२॥

अन्वयार्थ : भूत-अनुकम्पा, व्रती-अनुकम्पा, दान और सरागसंयम आदि का योग तथा क्षान्ति और शौच ये सातावेदनीय कर्म के आस्रव हैं ॥१२॥

केवलि-श्रुत-संघ-धर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य ॥१३॥

अन्वयार्थ : केवली, श्रुत, संघ, धर्म और देव इनका अवर्णवाद दर्शनमोहनीय कर्म का आस्रव है ॥१३॥

कषायोदयात्तीव्र-परिणामश्चारित्र-मोहस्य ॥१४॥

अन्वयार्थ : कषाय के उदय से होने वाला तीव्र आत्मपरिणाम चारित्रमोहनीय का आस्रव है ॥१४॥

बह्वारम्भ-परिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ॥१५॥

अन्वयार्थ : बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रहपने का भाव नारकायु का आस्रव है ॥१५॥

माया तैर्यग्योनस्य ॥१६॥

अन्वयार्थ : माया तिर्यचायु का आस्रव है ॥१६॥

अल्पारम्भ परिग्रहत्वं मानुषस्य ॥१७॥

अन्वयार्थ : अल्प आरम्भ और अल्प परिग्रहपने का भाव मनुष्यायु के आस्रव हैं ॥१७॥

स्वभाव-मार्दवं च ॥१८॥

अन्वयार्थ : स्वभाव की मृदुता भी मनुष्यायु का आस्रव है ॥१८॥

निःशील-व्रतत्वं च सर्वेषाम् ॥१९॥

अन्वयार्थ : शीलरहित और व्रतरहित होना सब आयुओं का आस्रव है ॥१९॥

सरागसंयम-संयमा-संयमाकामनिर्जराबालतपांसि दैवस्य ॥२०॥

अन्वयार्थ : सरागसंयम, संयमासंयम, अकामनिर्जरा और बालतप ये देवायु के आस्रव हैं ॥२०॥

सम्यक्त्वं च ॥२१॥

अन्वयार्थ : सम्यक्त्व भी देवायु का आस्रव है ॥२१॥

योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः ॥२२॥

अन्वयार्थ : योगवक्रता और विसंवाद ये अशुभ नाम कर्म के आस्रव हैं ॥२२॥

तद्विपरीतं शुभस्य ॥२३॥

अन्वयार्थ : उससे विपरीत अर्थात् योग की सरलता और अविसंवाद ये शुभनामकर्म के आस्रव हैं ॥२३॥

दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नता-शील-व्रतेष्वनतीचारोऽभीक्षण-ज्ञानोपयोगसंवेगौ
शक्तितस्त्याग-तपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्य-करणमर्हदाचार्य-बहुश्रुत-प्रवचन-
भक्तिरावश्यकपरिहाणिमार्ग-प्रभावना-प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य ॥२४॥

अन्वयार्थ : दर्शनविशुद्धि, विनयसंपन्नता, शील और व्रतों का अतिचार रहित पालन करना, ज्ञान में सतत उपयोग, सतत संवेग, शक्ति के अनुसार त्याग, शक्ति के अनुसार तप, साधु-समाधि, वैयावृत्य करना, अरिहंतभक्ति, आचार्यभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, आवश्यक क्रियाओं को न छोड़ना, मोक्षमार्ग की प्रभावना और प्रवचनवात्सल्य ये तीर्थकर नामकर्म के आस्रव हैं ॥२४॥

परात्म-निन्दा-प्रशंसे सदसद् गुणोच्छादनोद्भावेन च नीचैर्गोत्रस्य ॥२५॥

अन्वयार्थ : परनिन्दा, आत्मप्रशंसा, सद्गुणों का उच्छादन और असद्गुणों का उद्भावन ये नीचगोत्र के आस्रव हैं ॥२५॥

तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ॥२६॥

अन्वयार्थ : उनका विपर्यय अर्थात् परप्रशंसा, आत्मनिन्दा, सद्गुणों का उद्भावन और असद्गुणों का उच्छादन तथा नम्रवृत्ति और अनुत्सेक ये उच्च गोत्र के आस्रव हैं ॥२६॥

विघ्नकरण-मन्तरायस्य ॥२७॥

अन्वयार्थ : दानादिक में विघ्न डालना अन्तराय कर्म का आस्रव है ॥२७॥

अधिकार-७ (आस्रवाधिकार)

हिंसाऽनृत-स्तेयाब्रह्म-परिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ॥१॥

अन्वयार्थ : हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह से विरत होना व्रत है ॥१॥

देश सर्वतोऽणु-महती ॥२॥

अन्वयार्थ : हिंसादिक से एकदेश निवृत्त होना अणुव्रत है और सब प्रकार से निवृत्त होना महाव्रत है ॥२॥

तत्स्थैर्यार्थ भावनाः पञ्च-पञ्च ॥३॥

अन्वयार्थ : उन व्रतों को स्थिर करने के लिए प्रत्येक व्रत की पाँच पाँच भावनाएँ हैं ॥३॥

वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपण-समित्यालोकित-पान-भोजनानि पञ्च ॥४॥

अन्वयार्थ : वचनगुप्ति, मनोगुप्ति, ईर्यासमिति, आदाननिक्षेपणसमिति और आलोकितपान-भोजन ये अहिंसाव्रत की पाँच भावनाएँ हैं ॥४॥

क्रोध-लोभ-भीरुत्व-हास्य-प्रत्याख्यानान्यनुवीचि-भाषणं च पञ्च ॥५॥

अन्वयार्थ : क्रोधप्रत्याख्यान, लोभप्रत्याख्यान, भीरुत्वप्रत्याख्यान, हास्यप्रत्याख्यान और अनुवीचीभाषण ये सत्य व्रत की पाँच भावनाएँ हैं ॥५॥

शून्यागार-विमोचितावास-परोपरोधाकरण-भैक्ष्यशुद्धि-सधर्मावि-संवादाः पञ्च ॥६॥

अन्वयार्थ : शून्यागारवास, विमोचितावास, परोपरोधाकरण, भैक्ष्यशुद्धि और सधर्माविसंवाद ये अचौर्य व्रत की पाँच भावनाएँ हैं ॥६॥

स्त्रीरागकथा श्रवण-तन्मनोहरांग निरीक्षण पूर्व-रतानुस्मरण-वृष्येष्टरस- स्वशरीरसंस्कारत्यागाः पञ्च ॥७॥

अन्वयार्थ : स्त्रियों में राग को पैदा करने वाली कथा के सुनने का त्याग, स्त्रियों के मनोहर अंगों को देखने का त्याग, पुर्व भोगों के स्मरण का त्याग, गरिष्ठ और इष्ट रस का त्याग तथा अपने शरीर के संस्कार का त्याग ये ब्रह्मचर्य व्रत की पाँच भावनाएँ हैं ॥७॥

मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रिय-विषय-राग-द्वेष वर्जनानि पञ्च ॥८॥

अन्वयार्थ : मनोज्ञ और अमनोज्ञ इन्द्रियों के विषयों में क्रम से राग और द्वेष का त्याग करना ये अपरिग्रहव्रत की पाँच भावनाएँ हैं ॥८॥

हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम् ॥९॥

अन्वयार्थ : हिंसादिक पाँच दोषों में ऐहिक और पारलौकिक अपाय और अवद्य का दर्शन भावने योग्य है ॥९॥

दुःखमेव वा ॥१०॥

अन्वयार्थ : अथवा हिंसादिक दुःख ही हैं ऐसी भावना करनी चाहिए ॥१०॥

मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थानि च सत्त्व-गुणाधिक-क्लिश्यमानाविनेयेषु ॥११॥

अन्वयार्थ : प्राणीमात्र में मैत्री, गुणाधिकों में प्रमोद, क्लिश्यमानों में करुणा वृत्ति और अविनेयों में माध्यस्थ्य भावना करनी चाहिए ॥११॥

जगत्काय-स्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थम् ॥१२॥

अन्वयार्थ : संवेग और वैराग्य के लिए जगत् के स्वभाव और शरीर के स्वभाव की भावना करनी चाहिए ॥१२॥

प्रमत्तयोगात्प्राण-व्यपरोपणं हिंसा ॥१३॥

अन्वयार्थ : प्रमत्तयोग से प्राणों का वध करना हिंसा है ॥१३॥

असदभिधानमनृतम् ॥१४॥

अन्वयार्थ : असत् बोलना अनृत है ॥१४॥

अदत्तादानं स्तेयम् ॥१५॥

अन्वयार्थ : बिना दी हुई वस्तु का लेना स्तेय है ॥१५॥

मैथुनम-ब्रह्म ॥१६॥

अन्वयार्थ : मैथुन अब्रह्म है ॥१६॥

मूर्च्छा परिग्रहः ॥१७॥

अन्वयार्थ : मूर्च्छा परिग्रह है ॥१७॥

निःशल्यो व्रती ॥१८॥

अन्वयार्थ : जो शल्यरहित है वह व्रती है ॥१८॥

अगार्यनगारश्च ॥१९॥

अन्वयार्थ : उसके अगारी और अनागार ये दो भेद हैं ॥१९॥

अणुव्रतोऽगारी ॥२०॥

अन्वयार्थ : अणुव्रतों का धारी अगारी है ॥२०॥

दिग्देशानर्थदण्ड-विरति-सामायिक-प्रोषधोपवासोपभोग-परिभोग-परिमाणातिथि-संविभागव्रतसम्पन्नश्च ॥२१॥

अन्वयार्थ : वह दिग्विरति, देशविरति, अनर्थदण्डविरति, सामायिकव्रत, प्रोषधोपवासव्रत, उपभोगपरिभोगपरिमाणव्रत और अतिथिसंविभागव्रत इन व्रतों से भी सम्पन्न होता है ॥२१॥

मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता ॥२२॥

अन्वयार्थ : तथा वह मारणान्तिक संलेखना का प्रीतिपूर्वक सेवन करने वाला होता है ॥२२॥

शंका-कांक्षाविचिकित्सान्यदृष्टि-प्रशंसा-संस्तवाः सम्यग्दृष्टेरती-चाराः ॥२३॥

अन्वयार्थ : शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टिप्रशंसा और अन्यदृष्टिसंस्तव ये सम्यग्दृष्टि के पाँच अतिचार हैं ॥२३॥

व्रत-शीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम् ॥२४॥

अन्वयार्थ : व्रतों और शीलों में पाँच पाँच अतिचार हैं जो क्रम से इस प्रकार हैं ॥२४॥

बंधवध-च्छेदाति-भारारोपणान्नपान-निरोधाः ॥२५॥

अन्वयार्थ : बन्ध, वध, छेद, अतिभार का आरोपण और अन्नपान का निरोध ये अहिंसा अणुव्रत के पाँच अतिचार हैं ॥२५॥

मिथ्योपदेश-रहोभ्याख्यान-कूटलेखक्रिया-न्यासापहार-साकारमन्त्रभेदाः ॥२६॥

अन्वयार्थ : मिथ्योपदेश, रहोभ्याख्यान, कूटलेखक्रिया, न्यासापहार और साकारमन्त्रभेद ये सत्याणुव्रत के पाँच अतिचार हैं ॥२६॥

स्तेनप्रयोग-तदाहतादानविरुद्धराज्यातिक्रम-हीनाधिकमानोन्मान-प्रतिरूपक-व्यवहाराः ॥२७॥

अन्वयार्थ : स्तेनप्रयोग, स्तेन आहतादान, विरुद्धराज्यातिक्रम, हीनाधिक मानोन्मान और प्रतिरूपक व्यवहार ये अचौर्य अणुव्रत के पाँच अतिचार हैं ॥२७॥

परविवाह करणेत्वरिका-परिगृहीतापरिगृहीता-गमनानङ्गक्रीडा-कामतीव्राभिनिवेशाः ॥२८॥

अन्वयार्थ : परविवाहकरण, इत्वरिकापरिगृहीतागमन, इत्वारिका-अपरिगृहीतागमन, अनङ्गक्रीडा और कामतीव्राभिनिवेश ये स्वदारसंतोष अणुव्रत के पाँच अतिचार हैं ॥२८॥

क्षेत्रवास्तु-हिरण्यसुवर्ण-धन-धान्य-दासीदास-कुप्य-प्रमाणातिक्रमाः ॥२९॥

अन्वयार्थ : क्षेत्र और वास्तु के प्रमाण का अतिक्रम, हिरण्य और सुवर्ण के प्रमाण का अतिक्रम, धन और धान्य के प्रमाण का अतिक्रम, दासी और दास के प्रमाण का अतिक्रम तथा कुप्य के प्रमाण का अतिक्रम ये परिग्रहपरिमाण अणुव्रत के पाँच अतिचार हैं ॥२९॥

ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धि-स्मृत्यन्तराधानानि ॥३०॥

अन्वयार्थ : ऊर्ध्वव्यतिक्रम, अधोव्यतिक्रम, तिर्यग्व्यतिक्रम, क्षेत्रवृद्धि और स्मृत्यन्तराधान ये दिग्विरतिव्रत के पाँच अतिचार हैं ॥३०॥

आनयन-प्रेष्यप्रयोग-शब्दरूपानुपात-पुद्गलक्षेपाः ॥३१॥

अन्वयार्थ : आनयन, प्रेष्यप्रयोग, शब्दानुपात, रूपानुपात और पुद्गलक्षेप ये देशविरति व्रत के पाँच अतिचार हैं ॥३१॥

कन्दर्प-कौत्कुच्य-मौखर्यासमीक्ष्याधि-करणोपभोगपरिभोगानर्थक्यानि ॥३२॥

अन्वयार्थ : कन्दर्प, कौत्कुच्य, मौख्य, असमीक्ष्याधिकरण और उपभोगपरिभोगानर्थक्य ये अनर्थदण्डविरति व्रत के पाँच अतिचार हैं ॥३२॥

योग दुःप्रणिधानानादर-स्मृत्यनु-पस्थानानि ॥३३॥

अन्वयार्थ : काययोगदुष्प्रणिधान, वचनयोगदुष्प्रणिधान और मनोयोगदुष्प्रणिधान, अनादर और स्मृति का अनुपस्थान ये सामायिक व्रत के पाँच अतिचार हैं ॥३३॥

अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गादानसंस्तरोपक्रमणा-नादरस्मृत्यनुप-स्थानानि ॥३४॥

अन्वयार्थ : अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जित भूमि में उत्सर्ग, अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जित वस्तु का आदान, अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जित संस्तर का उपक्रमण, अनादर और स्मृति का अनुपस्थान ये प्रोषधोपवास व्रत के पाँच अतिचार हैं ॥३४॥

सचित्त-संबंधसम्मिश्रा-भिषवदुःपक्वाहाराः ॥३५॥

अन्वयार्थ : सचित्ताहार, सम्बन्धाहार, सम्मिश्राहार, अभिषवाहार और दुःपक्वाहार ये उपभोगपरिभोगपरिमाण व्रत के पाँच अतिचार हैं ॥३५॥

सचित्त-निक्षेपापिधानपरव्यपदेश-मात्सर्यकालातिक्रमाः ॥३६॥

अन्वयार्थ : सचित्तनिक्षेप, सचित्तापिधान, परव्यपदेश, मात्सर्य और कालातिक्रम ये अतिथिसंविभाग व्रत के पाँच अतिचार हैं ॥३६॥

जीवित-मरणाशंसा-मित्रानुराग-सुखानुबंध-निदानानि ॥३७॥

अन्वयार्थ : जीविताशंसा, मरणाशंसा, मित्रानुराग, सुखानुबन्ध और निदान ये सल्लेखना के पाँच अतिचार हैं ॥३७॥

अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम् ॥३८॥

अन्वयार्थ : अनुग्रह के लिए अपनी वस्तुका त्याग करना दान हैं ॥३८॥

विधि-द्रव्य-दातृ-पात्र-विशेषात्तद्विशेषः ॥३९॥

अन्वयार्थ : विधि, देय वस्तु, दाता और पात्र की विशेषता से उसकी विशेषता है ॥३९॥

अधिकार-८ (बंधाधिकार)

मिथ्यादर्शनाविरति-प्रमाद-कषाय-योगा बन्धहेतवः ॥१॥

अन्वयार्थ : मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये बंध के हेतु हैं ॥१॥

सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स बंधः ॥२॥

अन्वयार्थ : कषाय सहित होने से जीव कर्म के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है वह बन्ध है ॥२॥

प्रकृति स्थित्यनुभव-प्रदेशास्तद्विधयः ॥३॥

अन्वयार्थ : उसके प्रकृति, स्थिति, अनुभव और प्रदेश ये चार भेद हैं ॥३॥

आद्यो ज्ञान-दर्शनावरणवेदनीय-मोहनीयायुर्नाम-गोत्रान्तरायाः ॥४॥

अन्वयार्थ : पहला अर्थात् प्रकृतिबन्ध ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तरायरूप है ॥ ४॥

पञ्च-नव-द्वयष्टाविंशति-चतुर्-द्विचत्वारिंशद्-द्वि-पञ्च-भेदा-यथाक्रमम् ॥५॥

अन्वयार्थ : आठ मूल प्रकृतियों के अनुक्रम से पाँच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, ब्यालीस, दो और पाँच भेद हैं ॥५॥

मतिश्रुतावधि-मनःपर्यय केवलानाम् ॥६॥

अन्वयार्थ : मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान इनको आवरण करने वाले कर्म पाँच ज्ञानावरण हैं ॥६॥

चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रा-निद्रानिद्रा-प्रचला-प्रचलाप्रचला-स्त्यानगृद्धयश्च ॥७॥

अन्वयार्थ : चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन इन चारों के चार आवरण तथा निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचला-प्रचला और स्त्यानगृद्धि ये पाँच निद्रादिक ऐसे नौ दर्शनावरण हैं ॥७॥

सदसद्वेद्ये ॥८॥

अन्वयार्थ : सद्वेद्य और असद्वेद्य ये दो वेदनीय हैं ॥८॥

दर्शनचारित्र-मोहनीयाकषाय-कषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्वि-नव-षोडशभेदाः सम्यक्त्व-मिथ्यात्व-तदुभयान्यकषाय-कषायौ हास्यरत्यरति-शोक-भय-जुगुप्सा-स्त्री-पुत्रपुंसक-वेदा अनन्तानुबन्ध-प्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान-संज्वलन-विकल्पाश्चैकशः क्रोध-मान-माया-लोभाः ॥९॥

अन्वयार्थ : दर्शनमोहनीय, चारित्रमोहनीय, अकषायवेदनीय और कषाय वेदनीय इनके क्रम से तीन, दो, नौ और सोलह भेद हैं । सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और तदुभय ये तीन दर्शनमोहनीय हैं । अकषाय वेदनीय और कषायवेदनीय ये दो चारित्र-मोहनीय हैं । हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद और नपुंसकवेद ये नौ अकषावेदनीय हैं । तथा अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन ये प्रत्येक क्रोध, मान, माया और लोभ के भेद से सोलह कषायवेदनीय हैं ॥९॥

नारकतैर्यग्योन-मानुष-दैवानि ॥१०॥

अन्वयार्थ : नरकायु, तिर्यचायु, मनुष्यायु और देवायु ये चार आयु हैं ॥१०॥

गति-जाति-शरीराङ्गोपाङ्गनिर्माण-बंधन-संघात-संस्थान-संहनन-स्पर्श-रस-गंध-
वर्णानुपूर्व्यागुरुलघूपघात-परघातातपोद्योतोच्छ्वास-विहायोगतयः प्रत्येक-शरीर-त्रस-
सुभग-सुस्वर-शुभ-सूक्ष्म-पर्याप्ति-स्थिरादेय यशः कीर्ति-सेतराणि तीर्थकरत्वं च ॥

११ ॥

अन्वयार्थ : गति, जाति, शरीर, अंगोपाङ्ग, निर्माण, बन्धन, संघात, संस्थान, संहनन, स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, आनुपूर्व्य, अगुरुलघु, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, और विहायोगति तथा प्रतिपक्षभूत प्रकृतियों के साथ अर्थात् साधारण शरीर और प्रत्येक शरीर, स्थावर और त्रस, दुर्भग और सुभग, दुःस्वर और सुस्वर, अशुभ और शुभ, बादर और सूक्ष्म, अपर्याप्त और पर्याप्त, अस्थिर और स्थिर, अनादेय और आदेय, अयशःकीर्ति और यशःकीर्ति एवं तीर्थकरत्व ये ब्यालीस नामकर्म के भेद हैं ॥११॥

उच्चैर्नीचैश्च ॥१२॥

अन्वयार्थ : उच्चगोत्र और नीचगोत्र ये दो गोत्रकर्म हैं ॥१२॥

दान-लाभ-भोगोपभोग-वीर्याणाम् ॥१३॥

अन्वयार्थ : दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य इनके पाँच अन्तराय हैं ॥१३॥

आदितस्तिसृणा-मंतरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यः परा स्थितिः ॥१४॥

अन्वयार्थ : आदि की तीन प्रकृतियाँ अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण और वेदनीय तथा अन्तराय इन चार की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोटाकोटि सागरोपम है ॥१४॥

सप्तति-मोहनीयस्य ॥१५॥

अन्वयार्थ : मोहनीय की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोटाकोटि सागरोपम है ॥१५॥

विंशतिर्नाम-गोत्रयोः ॥१६॥

अन्वयार्थ : नाम और गोत्र की उत्कृष्ट स्थिति बीस कोटाकोटि सागरोपम है ॥१६॥

त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ॥१७॥

अन्वयार्थ : आयु की उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागरोपम है ॥१७॥

अपरा द्वादश मुहूर्ता वेदनीयस्य ॥१८॥

अन्वयार्थ : वेदनीय की जघन्य स्थिति बारह मुहूर्त है ॥१८॥

नाम-गोत्रयोरष्टौ ॥१९॥

अन्वयार्थ : नाम और गोत्र की जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त है ॥१९॥

शेषाणामन्तर्मुहूर्ता ॥२०॥

अन्वयार्थ : बाकी के पाँच कर्मों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है ॥२०॥

विपाकोऽनुभवः ॥२१॥

अन्वयार्थ : विपाक अर्थात् विविध प्रकार के फल देने की शक्ति का पड़ना ही अनुभव है ॥२१॥

स यथानाम् ॥२२॥

अन्वयार्थ : वह जिस कर्म का जैसा नाम है उसके अनुरूप होता है ॥२२॥

ततश्च निर्जरा ॥२३॥

अन्वयार्थ : इसके बाद निर्जरा होती है ॥२३॥

नाम-प्रत्ययाः सर्वतो योग-विशेषात्-सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाह-स्थिताः सर्वात्म- प्रदेशेष्वनन्तानन्त-प्रदेशाः ॥२४॥

अन्वयार्थ : कर्म प्रकृतियों के कारणभूत प्रतिसमय योगविशेष से सूक्ष्म, एकक्षेत्रावगाही और स्थित अनन्तानन्त पुद्गल परमाणु सब आत्मप्रदेशों में (सम्बन्ध को प्राप्त) होते हैं ॥२४॥

सद्वेद्यशुभायुर्नाम-गोत्राणि पुण्यम् ॥२५॥

अन्वयार्थ : साता वेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम और शुभ गोत्र ये प्रकृतियाँ पुण्यरूप हैं ॥२५॥

अतोऽन्यत्पापम् ॥२६॥

अन्वयार्थ : इनके सिवा शेष सब प्रकृतियाँ पापरूप हैं ॥२६॥

अधिकार-९ (संवर- निर्जराधिकार)

आस्रव-निरोधः संवरः ॥१॥

अन्वयार्थ : आस्रव का निरोध संवर है ॥१॥

स गुप्ति-समिति-धर्मानुप्रेक्षा-परीषहजय-चारित्रैः ॥२॥

अन्वयार्थ : वह संवर गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परिषहजय और चारित्र से होता है ॥२॥

तपसा निर्जरा च ॥३॥

अन्वयार्थ : तप से निर्जरा होती है और संवर भी होता है ॥३॥

सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः ॥४॥

अन्वयार्थ : योगों का सम्यक् प्रकार से निग्रह करना गुप्ति है ॥४॥

ईर्याभाषैषणा-दाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः ॥५॥

अन्वयार्थ : ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेप और उत्सर्ग ये पाँच समितियाँ हैं ॥५॥

उत्तमक्षमा-मार्दवार्जव-सत्य-शौच-संयमतपस्त्यागा-किञ्चन्य-ब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥६॥

अन्वयार्थ : उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम शौच, उत्तम सत्य, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आर्किचन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य यह दस प्रकार का धर्म है ॥६॥

अनित्याशरण-संसारैकत्वान्य-त्वाशुच्यास्रवसंवर-निर्जरा-लोक-बोधिदुर्लभ-धर्म- स्वाख्यातत्त्वानु-चिन्तन-मनुप्रेक्षाः ॥७॥

अन्वयार्थ : अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्मस्वाख्यातत्व का बार-बार चिन्तन करना अनुप्रेक्षाएँ हैं ॥७॥

मार्गाच्यवन-निर्जरार्थ परिषोढव्याः परीषहाः ॥८॥

अन्वयार्थ : मार्ग से च्युत न होने के लिए और कर्मों की निर्जरा करने के लिए जो सहन करने योग्य हों वे परीषह हैं ॥८॥

क्षुत्पिपासा-शीतोष्णदंश-मशक-नाग्यारति-स्त्री-चर्या-निषद्या-

शय्याक्रोशवधयाचनालाभ-रोग-तृणस्पर्श-मल-सत्कारपुरस्कार-प्रज्ञाज्ञानादर्शनानि ॥ ९॥

अन्वयार्थ : क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, नग्नता, अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या, शय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कारपुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान और अदर्शन इन नाम वाले परीषह हैं ॥९॥

सूक्ष्मसाम्पराय-छद्मस्थवीत-रागयोश्चतुर्दश ॥१०॥

अन्वयार्थ : सूक्ष्मसाम्पराय (दसवें) और छद्मस्थ-वीतराग (ग्यारहवें-बारहवें गुणस्थान) में चौदह परीषह होती हैं ॥१०॥

एकादश जिने ॥११॥

अन्वयार्थ : जिन में ग्यारह परीषह सम्भव हैं ॥११॥

बादर-साम्पराये सर्वे ॥१२॥

अन्वयार्थ : बादर साम्पराय गुणस्थान तक सभी परीषह सम्भव हैं ॥१२॥

ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥१३॥

अन्वयार्थ : ज्ञानावरण के सद्भाव में प्रज्ञा और अज्ञान, दो परीषह होती हैं ॥१३॥

दर्शन-मोहान्तराययोरदर्शनालाभौ ॥१४॥

अन्वयार्थ : दर्शनमोह और अन्तराय के सद्भाव में क्रम से अदर्शन और अलाभ परीषह होते हैं ॥१४॥

चारित्रमोहे नाग्र्यारति-स्त्री-निषद्या-क्रोश-याचना-सत्कारपुरस्काराः ॥१५॥

अन्वयार्थ : चारित्रमोह के सद्भाव में नाग्र्य, अरति, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, याचना और सत्कारपुरस्कार परीषह होते हैं ॥१५॥

वेदनीये शेषाः ॥१६॥

अन्वयार्थ : बाकी के सब परीषह वेदनीय के सद्भाव में होते हैं ॥१६॥

एकादयो भाज्या युगपदेक-स्मिन्नैकोनविंशतेः ॥१७॥

अन्वयार्थ : एक साथ एक जीव के उन्नीस परीषह तक होती हैं ॥१७॥

सामायिकच्छेदोपस्थापना-परिहारविशुद्धि-सूक्ष्मसाम्पराय-यथाख्यात-मितिचारित्रम् ॥१८॥

अन्वयार्थ : सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात यह पाँच प्रकार का चारित्र है ॥१८॥

अनशनावमौदर्य-वृत्तिपरिसंख्यान-रस-परित्याग-विविक्तशय्यासन-कायक्लेशा बाह्यं तपः ॥१९॥

अन्वयार्थ : अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन और कायक्लेश यह छह प्रकार का बाह्य तप है ॥१९॥

प्रायश्चित्त-विनय-वैयावृत्य-स्वाध्याय-व्युत्सर्ग-ध्यानान्युत्तरम् ॥२०॥

अन्वयार्थ : प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान यह छह प्रकार का आभ्यन्तर तप है ॥२०॥

नवचतुर्दश-पञ्च द्विभेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात् ॥२१॥

अन्वयार्थ : ध्यान से पूर्व के आभ्यन्तर तपों के अनुक्रम से नौ, चार, दश, पाँच और दो भेद हैं ॥२१॥

आलोचना-प्रतिक्रमण-तदुभय-विवेक-व्युत्सर्ग-तपश्छेदपरिहारो-पस्थापनाः ॥२२॥

अन्वयार्थ : आलोचना, प्रतिक्रमण, तदुभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, परिहार और उपस्थापना यह नव प्रकार का प्रायश्चित्त है ॥२२॥

ज्ञान-दर्शन-चारित्र्योपचाराः ॥२३॥

अन्वयार्थ : ज्ञान विनय, दर्शन विनय, चारित्र्य विनय और उपचार विनय यह चार प्रकार का विनय है ॥२३॥

आचार्योपाध्याय-तपस्वि-शैक्ष-ग्लान-गण-कुल-संघ-साधु-मनोज्ञानाम् ॥२४॥

अन्वयार्थ : आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष, ग्लान, गण, कुल, संघ, साधु और मनोज्ञ इनकी वैयावृत्य के भेद से वैयावृत्य दश प्रकार का है ॥२४॥

वाचना-पृच्छनानुप्रेक्षाम्नाय-धर्मोपदेशाः ॥२५॥

अन्वयार्थ : वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और धर्मोपदेश यह पाँच प्रकार का स्वाध्याय है ॥२५॥

बाह्याभ्यन्तरो-पध्योः ॥२६॥

अन्वयार्थ : बाह्य और अभ्यन्तर उपधि का त्याग यह दो प्रकार का व्युत्सर्ग है ॥२६॥

उत्तम-संहननस्यैकाग्र-चिन्ता-निरोधो ध्यानमान्त-मुहूर्तात् ॥२७॥

अन्वयार्थ : उत्तम संहनन वाले का एक विषय में चित्तवृत्ति का रोकना ध्यान है जो अन्तर्मुहूर्त काल तक होता है ॥२७॥

आर्त-रौद्र-धर्म्य-शुक्लानि ॥२८॥

अन्वयार्थ : आर्त, रौद्र, धर्म्य और शुक्ल ये ध्यान के चार भेद हैं ॥२८॥

परे मोक्षहेतू ॥२९॥

अन्वयार्थ : उनमें से पर अर्थात् अन्त के दो ध्यान मोक्ष के हेतु हैं ॥२९॥

आर्तममनोज्ञस्य संप्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृति-समन्वाहारः ॥३०॥

अन्वयार्थ : अमनोज्ञ पदार्थ के प्राप्त होने पर उसके वियोग के लिए चिन्तासातत्य का होना प्रथम आर्तध्यान है ॥३०॥

विपरीतं मनोज्ञस्य ॥३१॥

अन्वयार्थ : मनोज्ञ वस्तु के वियोग होने पर उसकी प्राप्ति की सतत चिन्ता करना दूसरा आर्तध्यान है ॥३१॥

वेदनायाश्च ॥३२॥

अन्वयार्थ : वेदना के होने पर उसे दूर करने के लिए सतत चिन्ता करना तीसरा आर्तध्यान है ॥३२॥

निदानं च ॥३३॥

अन्वयार्थ : निदान नाम का चौथा आर्तध्यान है ॥३३॥

तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानां ॥३४॥

अन्वयार्थ : यह आर्तध्यान अविरत, देशविरत और प्रमत्तसंयत जीवों के होता है ॥३४॥

हिंसानृत-स्तेय-विषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरत-देशविरतयोः ॥३५॥

अन्वयार्थ : हिंसा, असत्य, चोरी और विषयसंरक्षण के लिए सतत चिन्तन करना रौद्रध्यान है। वह अविरत और देशविरत के होता है ॥३५॥

आज्ञापाय-विपाक-संस्थान-विचयाय धर्म्यम् ॥३६॥

अन्वयार्थ : आज्ञा, अपाय, विपाक और संस्थान इनकी विचारणा के निमित्त मन को एकाग्र करना धर्म्यध्यान है ॥३६॥

शुक्ले चाद्ये पूर्व-विदः ॥३७॥

अन्वयार्थ : आदि के दो शुक्लध्यान पूर्वविद् के होते हैं ॥३७॥

परे केवलिनः ॥३८॥

अन्वयार्थ : शेष के दो शुक्लध्यान केवली के होते हैं ॥३८॥

पृथक्त्वैकत्व-वितर्क-सूक्ष्मक्रिया-प्रतिपाति-व्युपरत-क्रियानिवर्तीनि ॥३९॥

अन्वयार्थ : पृथक्त्ववितर्क, एकत्ववितर्क, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति और व्युपरतक्रियानिवर्ति ये चार शुक्लध्यान हैं ॥३९॥

त्र्येकयोग-काययोगायोगानाम् ॥४०॥

अन्वयार्थ : वे चार ध्यान क्रम से तीन योगवाले, एक योगवाले, काययोगवाले और अयोग के होते हैं ॥४०॥

एकाश्रये सवितर्कवीचारे पूर्वे ॥४१॥

अन्वयार्थ : पहले के दो ध्यान एक आश्रय वाले, सवितर्क और सवीचार होते हैं ॥४१॥

अवीचारं द्वितीयम् ॥४२॥

अन्वयार्थ : दूसरा ध्यान अवीचार है ॥४२॥

वितर्कः श्रुतम् ॥४३॥

अन्वयार्थ : वितर्क का अर्थ श्रुत है ॥४३॥

वीचारोऽर्थव्यंजन-योगसंक्रान्तिः ॥४४॥

अन्वयार्थ : अर्थ, व्यञ्जन और योग की संक्रान्ति वीचार है ॥४४॥

सम्यग्दृष्टि-श्रावक-विरता-नन्तवियोजक-दर्शनमोह-क्षपकोपशम-कोपशांत-
मोहक्षपक-क्षीणमोह-जिनाः क्रमशोऽसंख्येय-गुण-निर्जराः ॥४५॥

अन्वयार्थ : सम्यग्दृष्टि, श्रावक, विरत, अनन्तानुबन्धिवियोजक, दर्शनमोहक्षपक, उपशमक, उपशान्तमोह, क्षपक, क्षीणमोह और जिन ये क्रम से असंख्यगुण निर्जरावाले होते हैं ॥४५॥

पुलाक-वकुश-कुशील-निर्ग्रन्थ-स्नातका निर्ग्रन्थाः ॥४६॥

अन्वयार्थ : पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक ये पाँच निर्ग्रन्थ हैं ॥४६॥

संयम-श्रुत-प्रतिसेवना-तीर्थलिङ्ग-लेश्योपपाद-स्थान-विकल्पतः साध्याः ॥४७॥

अन्वयार्थ : संयम, श्रुत, प्रतिसेवना, तीर्थ, लिंग, लेश्या, उपपाद और स्थान के भेद से इन निर्ग्रन्थों का व्याख्यान करना चाहिए ॥४७॥

अधिकार-१० (मोक्षाधिकार)

मोहक्षयाज्ज्ञान-दर्शनावरणान्तराय-क्षयाच्च केवलम् ॥१॥

अन्वयार्थ : मोह का क्षय होने से तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्म का क्षय होने से केवलज्ञान प्रकट होता है ॥१॥

बन्धहेत्वभाव-निर्जराभ्यां कृत्स्न-कर्म-विप्रमोक्षो मोक्षः ॥२॥

अन्वयार्थ : बन्ध-हेतुओं के अभाव और निर्जरा से सब कर्मों का आत्यन्तिक क्षय होना ही मोक्ष है ॥२॥

औपशमिकादि-भव्यत्वानां च ॥३॥

अन्वयार्थ : तथा औपशमिक आदि भावों और भव्यत्व भाव के अभाव होने से मोक्ष होता है ॥३॥

अन्यत्र केवलसम्यक्त्व-ज्ञान-दर्शन-सिद्धत्वेभ्यः ॥४॥

अन्वयार्थ : पर केवल सम्यक्त्व, केवलज्ञान और सिद्धत्व भाव का अभाव नहीं होता ॥४॥

तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्या-लोकान्तात् ॥५॥

अन्वयार्थ : तदनन्तर मुक्त जीव लोक के अन्त तक ऊपर जाता है ॥५॥

पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद्-बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च ॥६॥

अन्वयार्थ : पूर्वप्रयोग से, संग का अभाव होने से, बन्धन के टूटने से और वैसा गमन करना स्वभाव होने से मुक्त जीव ऊर्ध्वगमन करता है ॥६॥

आविद्धकुलालचक्रवद्-व्यपगतलेपालाबुवदेरण्डबीजवदग्रिशिखावच्च ॥७॥

अन्वयार्थ : घुमाये गये कुम्हार के चक्र के समान, लेप से मुक्त हुई तूमड़ी के समान, एरण्ड के बीज के समान और अग्नि की शिखा के समान ॥७॥

धर्मास्तिकायाभावात् ॥८॥

अन्वयार्थ : धर्मास्तिकाय का अभाव होने से मुक्त जीव लोकान्त से और ऊपर नहीं जाता ॥८॥

**क्षेत्र-काल-गति-लिङ्ग-तीर्थचारित्र-प्रत्येकबुद्धबोधित-ज्ञानावगाहनान्तर-
संख्याल्पबहुत्वतः साध्याः ॥९॥**

अन्वयार्थ : क्षेत्र, काल, गति, लिंग, तीर्थ, चारित्र, प्रत्येकबुद्ध, बोधितबुद्ध, ज्ञान, अवगाहना, अन्तर, संख्या और अल्पबहुत्व इन द्वारा सिद्ध जीव विभाग करने योग्य हैं ॥९॥
